ताश्चतस्त्रोऽपि पर्याप्तय एकेन्द्रियाणामेव, न्यान्येषाम्। एकेन्द्रियाणां नोच्छ्वास-मुपलभ्यते चेन्न, आर्षात्तदुपलम्भात् । प्रत्यक्षेणागमो बाध्यत इति चेदभवत्वस्य बाधा प्रत्यक्षात्प्रत्यक्षीकृताशेषप्रमेयात्। न चेन्द्रियजं प्रत्यक्षं समस्तवस्तुविषयं येन तदविषयीकृतस्य वस्तुनोऽभावो विधीयते १ (मु. भेदीयते ।)

एवं पर्याप्त्यपर्याप्तीरभिधाय साम्प्रतममुष्मिन्नयं योगो भवत्यमुष्मिंश्च न भवतीति प्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह ---

ओरालियकायजोगो पज्जत्ताणं ओरालियमिस्सकायजोगो अपज्जत्ताणं२ (ओरालं पज्जत्ते थावरकायादि जाव जोगो त्ति । तम्मिस्समपज्जते चदुगुणठाणेसु णियमेण ।। गो. जी. ६८०.) ।। ७६ ।।

षड्भि: पञ्चभिश्चतसृभिर्वा पर्याप्तिभिर्निष्पन्ना: परिनिष्ठितास्तिर्यञ्चो मनुष्याश्च पर्याप्ता: । किमेकया पर्याप्त्या निष्पन्न: पर्याप्त: उत साकल्येन निष्पन्न

वे चारों पर्याप्तियां एकेन्द्रिय जीवोंके ही होती हैं, दूसरोंके नहीं।

शंका -- एकेन्द्रिय जीवोंके उच्छ्वास तो नहीं पाया जाता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, एकेन्द्रियोंके श्वासोच्छ्वास होता है यह बात आगम प्रमाणसे जानी जाती है।

शंका -- प्रत्यक्षसे यह आगम बाधित है?

समाधान -- जिसने संपूर्ण पदार्थो को प्रत्यक्ष कर लिया है ऐसे प्रत्यक्ष प्रमाणसे यदि बाधा संभव हो तो वह प्रत्यक्षबाधा कही जा सकती है। परंतु इन्द्रियप्रत्यक्ष तो संपूर्ण पदार्थोंका विषय ही नहीं करता है, जिससे कि इन्द्रियप्रत्यक्षकी विषयताको नहीं प्राप्त होनेवाले पदार्थोंका अभाव किया जाय।

इसप्रकार पर्याप्ति और अपर्याप्तियोंका कथन करके अब इस जीवमें यह योग होता है और इस जीवमें यह योग नहीं होता है, इसका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं -- औदारिककाययोग पर्याप्तकोंके और औदारिकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकोंके होता है ।। ७६।।

शंका -- छह पर्याप्ति, पांच पर्याप्ति अथवा चार पर्याप्तियोंसे पूर्णताको प्राप्त हुए तिर्यंच और मनुष्य पर्याप्तक कहलाते हैं । तो क्या उनमेंसे किसी एक पर्याप्तिसे पूर्णताको प्राप्त हुआ पर्याप्तक कहलाता है या संपूर्ण पर्याप्तियोंसे पूर्णताको प्राप्त हुआ पर्याप्तक कहलाता है?

इति? शरीरपर्याप्त्या निष्पन्न: पर्याप्त इति भण्यते। तत्रौदारिककाययोग: निष्पन्न-शरीरावष्टम्भबलेनोत्पन्नजीवप्रदेशपरिस्पन्देन योग: औदारिककाययोग:। अपर्याप्तावस्थायामौदारिकमिश्रकाययोग:। कार्मणौदारिकस्कन्धनिबन्धनजीवप्रदेशपरिस्पन्देन योग: औदारिकमिश्रकाययोग इति यावत्। पर्याप्तावस्थायां कार्मणशरीरस्य सत्त्वात्तत्राप्युभयनिबन्धनात्मप्रदेशपरिस्पन्द इति औदारिकमिश्रकाययोग: किमु न स्यादिति चेन्न, तत्र तस्य सतोऽपि जीवप्रदेशपरिस्पन्दस्याहेतुत्वात्। न पारम्पर्यकृतं तध्देतुत्वम्, तस्यौपचारिकत्वात्। न तदपि, अविवक्षितत्वात्। अथ स्यात्परिस्पन्दस्य बन्धहेतुत्वे संचरदभ्राणामणि कर्मबन्ध: प्रसजतीति, न, कर्मजनितस्य चैतन्यपरिस्पन्दस्यास्त्रवहेतुत्वेन विवक्षितत्वात्। न चाभ्रपरिस्पन्द:। कर्मजनितो येन तध्देतुतामास्कन्देत्।

वैक्रियिककाययोगस्य सत्त्वोद्देशप्रतिपादनार्थमाह --

समाधान -- सभी जीव शरीरपर्याप्तिके निष्पन्न होने पर पर्याप्तक कहे जाते हैं।

उनमेंसे पहले औदारिककाययोगका लक्षण कहते हैं । पर्याप्तिको प्राप्त हुए शरीरके आलम्बनव्दारा उत्पन्न हुए जीवप्रदेश-परिस्पन्दसे जो योग होता है उसे औदारिककाययोग कहते हैं। और अपर्याप्त अवस्थामें औदारिकमिश्रकाययोग होता है । जिसका तात्पर्य इसप्रकार है कि कार्मण और औदारिकशरीरके स्कन्धोंके निमित्तसे जीवके प्रदेशोंमें उत्पन्न हुए परिस्पन्दसे जो योग होता है उसे औदारिकमिश्रकाययोग कहते हैं।

शंका -- पर्याप्त अवस्थामें कार्मणशरीरका सद्भाव होनेके कारण वहां पर भी कार्मण और औदारिकशरीरके स्कन्धोंके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंमे परिस्पन्द होता है, इसलिये वहां पर भी औदारिक मिश्रकाययोग क्यों नहीं कहा जाता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, पर्याप्त अवस्थामें यद्यपि कार्मणशरीर विद्यमान है फिर भी वह जीव-प्रदेशोंके परिस्पन्दका कारण नहीं है । यदि पर्याप्त-अवस्थामें कार्मणशरीर परंपरासे

जीवप्रदेशोंके परिस्पन्दका कारण कहा जावे, सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि, कार्मणशरीरको परंपरासे निमित्त मानना उपचार है। यदि कहें कि उपचारका भी यहां पर ग्रहण कर लिया जावे, सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि, उपचारसे परंपरारुप निमित्तकेग्रहण करनेकी यहां विवक्षा नहीं है ।

शंका -- परिस्पन्दको बन्धका कारण मानने पर संचार करते हुए मेघोंकेभी कर्मबन्ध प्राप्त हो जायगा, क्योकि, उनकेभी परिस्पन्द पाया जाता है ।

समाधान -- नहीं, क्योंकि, कर्मजनित चैतन्यपरिस्पन्द ही आस्त्रवका कारण है, यह अर्थ यहां पर विवक्षित है। मेघोंका परिस्पन्द कर्मजनित तो है नहीं, जिससे वह कर्मबन्धकेआस्त्रवका हेतु हो सके, अर्थात् नहीं हो सकता है।

अब वैक्रियिककाययोगके सत्त्वोद्देशके प्रतिपादन करने के लिये आगेका सूत्र कहते हैं --

---

वेउव्वियकायजोगो पज्जत्ताणं वेउव्वियमिस्सकायजोगो अपज्जत्ताणं १ (बेगुव्वं पज्जत्ते इदरे खलु होदि तस्स मिस्सं तु । गो. जी. ६८१) ।। ७७।।

पर्याप्तावस्थायां वैक्रियिककाययोगे सति तत्र शेषयोगाभाव: स्यादिति चेन्न, तत्र वैक्रियिककाययोग एवास्तीत्यवधारणाभावात्। अवधारणाभावेऽपर्याप्तावस्थायां शेषयोगानामपि सत्त्वमापतेदिति चेत्सत्यम् कार्मणकाययोगस्य सत्त्वोलम्भात्। न तव्दतत्र वाङ:मनसयोरपि सत्त्वमपर्याप्तानां तयोरभावस्योक्तत्वात्।

आहारकाययोगसत्त्वप्रदेशप्रतिपादनायाह--

आहारकायजोगो पज्जत्ताणं आहारमिस्सकायजोगो अपज्जत्ताणं २ (आहारो पज्जत्ते इदरे खलु होदि तस्स मिस्सो दु । गो. जी. ६८३.) ॥७८॥

आहारशरीरोत्थापक: पर्याप्त:, संयतत्वान्यथानुपपत्ते:। तथा चाहारमिश्रकाय--

---

वैक्रियिककाययोग पर्याप्तकोंकेऔर वैक्रियिकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकोंकेहोता है ।। ७७।।

शंका -- पर्याप्त अवस्थामें वैक्रियिककाययोगकेहोने पर वहां शेष योगोंका अभाव प्राप्त होता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, पर्याप्त अवस्थामें वैक्रियिककाययोग ही होता है ऐसा निश्चयरुप (अवधारणरुप) कथन नहीं किया है।

शंका -- जब की उक्त कथन निश्चयरुप नहीं है तो अपर्याप्त अवस्थामें भी उसी प्रकार शेष योगोंका सद्भाव प्राप्त हो जायगा?

समाधान -- यह कहना किसी अपेक्षासे ठीक है, क्योंकि, अपर्याप्त अवस्थामें वैक्रियिकमिश्रके अतिरिक्त कार्मणकाययोगका भी सद्भाव पाया जाता है। किंतु कार्मणकाययोगके समान अपर्याप्त अवस्थामें वचनयोग और मनोयोगका सद्भाव नहीं माना जा सकता है, क्योंकि, अपर्याप्त अवस्थामें इन दोनों योगोंका अभाव रहता है, यह बात पहले कही जा चुकी है।

अब आहारककाययोगकेअस्तित्वका आधार बतलानेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं -- आहारककाययोग पर्याप्तकोंकेऔर आहारकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकोंकेहोता है ।। ७८।।

शंका -- आहारकशरीरको उत्पन्न करनेवाला साधु पर्याप्तक ही होता है, अन्यथा उसके संयतपना नहीं बन सकता है। ऐसी हालतमें आहारकमिश्रकाययोग अपर्याप्तक के होता

योगोऽपयोप्तकस्येति न घटामटेदिति चेन्न, अनवगतसूत्राभिप्रायत्वात्। तद्यथाभवत्वसौ पर्याप्तक: औदारिकशरीरगतषट्पर्याप्त्यपेक्षया, आहारशरीरगतपर्याप्ति-निष्पत्त्यभावापेक्षया त्वपर्याप्तकोऽसौ । पर्याप्तापर्याप्तत्वयोर्नैकत्राक्रमेण संभव: विरोधादिति चेन्न, पर्याप्तापर्याप्तयोगयोरक्रमेणैकत्र न सम्भव: इतीष्टत्वात् । कथं न पूर्वोऽभ्युगम: इति विरोध इति चेन्न, भूतपूर्वगति१ (मु. गत।) न्यायापेक्षया,विरोधासिध्दे:।

विनष्टौदारिकशरीरसम्बन्धषट्पर्याप्तेरपरिनिष्ठिताहारशरीरगतपर्याप्तेरपर्याप्तकस्य कथं संयम इति चेत् ? न, संयमस्यास्त्रवनिरोधलक्षणस्य मन्दयोगेन सह विरोधासिध्दे: । विरोधे वा न केवलिनोऽपि समुध्दातगतस्य संयम:, तत्राप्यपर्याप्तकयोगास्तित्वं

है यह कथन नहीं बन सकता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, ऐसा कहनेवाला आगमके अभिप्रायको ही नहीं समझा है । आगमका अभिप्राय तो इस प्रकार है कि आहारशरीरको उत्पन्न करनेवाला साधु औदारिक शरीरगत छह पर्याप्तियोंकी अपेक्षा पर्याप्तक भले ही रहा आवे, किन्तु आहारकशरीरसंबन्धी पर्याप्तियोंकेपूर्ण होनेकी अपेक्षा वह अपर्याप्तक है।

शंका -- पर्याप्त और अपर्याप्तपना एकसाथ एक जीवमें संभव नहीं है, क्योंकि, एकसाथ एक जीवमें इन दोनोंके विरोध आता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, एकसाथ एक जीवमें पर्याप्त और अपर्याप्तसंबन्धी योग संभव नहीं हैं, यह बात हमें इष्ट ही है ।

शंका -- तो फिर हमारा पूर्व कथन क्यों न मान लिया जाय, अत: आपके कथनमें विरोध आता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, भूतपूर्व का ज्ञान करानेवाले न्यायकी अपेक्षा विरोध असिध्द है। अर्थात् औदारिक शरीरसंबन्धी पर्याप्तपनेकी अपेक्षा आहारकमिश्र अवस्थामें भी पर्याप्तपनेका व्यवहार किया जा सकता है।

शंका -- जिसके औदारिक शरीरसंबन्धी छह पर्याप्तियां नष्ट हो चुकी हैं, और आहारक शरीरसंबन्धी पर्याप्तियां अभी तक पूर्ण नहीं हुई हैं ऐसे अपर्याप्तक साधुके संयम कैसे हो सकता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, जिसका लक्षण आस्त्रवका निरोध करना है ऐसे संयमका मन्दयोग (आहारकमिश्रयोग) के साथ होनेमें कोई विरोध नहीं आता है। यदि इस मन्द-योगके साथ संयमके होनेमें विरोध आता ही है ऐसा माना जावे, तो समुध्दातको प्राप्त हुए केंवलीके भी संयम नहीं हो सकेगा, क्योंकि, यहां पर भी अपर्याप्तकसंबन्धी योगका सद्भाव पाया जाता है इसमें कोई विशेषता नहीं है ।

प्रत्यविशेषात् । 'संजदासंजद-संजदट्ठाणे १ (मु. संजदासंजदट्ठाणे) णियमा पज्जत्ता' इत्यनेनार्षेण सह कथं न विरोध: स्यादिति चेन्न, द्रव्यार्थिकनयापेक्षया प्रवृत्तसूत्रस्यास्या२ (मु. प्रवृत्तसूत्रस्या) भिप्रायेणाहारशरीरानिष्पत्त्यवस्थायामपि षट्पर्याप्तीनां सत्त्वाविरोधात् । कार्मणकाययोग: पर्याप्तेष्वपर्याप्तेषूभयत्र वा भवतीति नोक्तम्, तन्निश्चय: कुतो भवेत् ? 'कम्मइयकायजोगो विग्गहगइ-समावण्णाणं केवलीणं वा समुग्घाद-गदाणं३ (जी. सं. सू. ६०)' इत्येतस्मात्सूत्रादपर्याप्तेष्वेव कार्मणकाययोग इति निश्चीयते।

पर्याप्तिष्वपर्याप्तिषु च योगानां सत्त्वमसत्त्वं चाभिधायेदानीं गतिषु तत्र गुणस्थानानां सत्त्वासत्त्वप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह---

णेरइया मिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ।। ७९।।

नारका इत्यनेन बहुवचनेन स्यादित्येतस्य एकवचनस्य न सामानाधिकरण्य-

---

शंका -- 'संयतासंयत और संयतके सभी गुणस्थानोंमे जीव नियमसे पर्याप्तक होते हैं ' इस आर्षवचनके साथ पूर्वोक्त कथनका विरोध क्यों नहीं आजायगा?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे प्रवृत्त हुए इस सूत्रके अभिप्रायसे आहारक शरीरकी अपर्याप्त अवस्थामें भी औदारिक शरीरसंबन्धी छह पर्याप्तियोंके होनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

शंका -- कार्मणकाययोग पर्याप्त होने पर होता है, या अपर्याप्त रहने पर होता है, अथवा दोनों अवस्थाओंमें होता है, यह कुछ भी नहीं कहा, इसलिये इसका निश्चय कैसे किया जाय?

समाधान -- 'विग्रहगतिको प्राप्त चारों गतिके जीवोंके और समृध्दातगत केवलियोंके कार्मणकाययोग होता है' इस सूत्रके कथनानुसार अपर्याप्तकोंके ही कार्मणकाययोग होता है, इस कथनका निश्चय हो जाता है।

इसप्रकार पर्याप्ति और अपर्याप्तियोंमें योगोंके सत्त्व और असत्त्वका कथन करके अब चार गतिसंबन्धी पर्याप्ति और अपर्याप्तियोंमें गुणस्थानोंके सत्त्व और असत्त्वके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

नारकी जीव मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें पर्याप्तक भी होते हैं और अपर्याप्तक भी होते हैं ।। ७९।।

शंका -- सूत्रमें आये हुए ' नारका: ' इस बहुवचनके साथ ' स्यात् ' इस एक वचनका समानाधिकरण नहीं बन सकता है?

मिती चेन्न, एकस्य नानात्मकस्य नानात्वाविरोधात्। विरुध्दयो: कथमेकमधिकरण-मिती चेन्न, दृष्टत्वात् । न हि दृष्टेऽनुपपन्नता १ (स्वभावेऽध्यक्षत: सिध्दे यदि पर्यनुयुज्यते। तत्रोत्तरमिदं युक्तं न दृष्टेऽनुपपन्नता ।। स. त. पृ. २६.) नारका: मिथ्यादृष्टयोऽसंयतसम्यग्दृष्टयश्च पर्याप्ताश्चापर्याप्ताश्च भवन्ति। समुच्चयावगतये चशब्दोऽत्र वक्तव्य:? न, सामर्थ्यलभ्यत्वात्।

तत्रतनशेषगुणव्दयप्रदेशप्रतिपादनार्थमाह---

सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठि-ट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ।। ८० ।।

नारका: निष्पन्नषट्पर्याप्तय: सन्त: एताभ्यां२ (मु. ताभ्यां ।।) गुणाभ्यां परिणमन्ते नापर्याप्तावस्थायाम् । किमिति तत्र तौ नोप्तद्येते इति चेत्तयोस्तत्रोत्पत्तिनिमित्तपारिणामा-

---

समाधान -- नहीं, क्योंकि, एक भी नानात्मक होता है, इसलिये एकको नानारुप होनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

शंका -- विरुध्द दो पदार्थोंका एकाधिकरण कैसे हो सकता है ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, विरुध्द दो पदार्थोंका भी एकाधिकरण देखा जाता है। और देखे गये कार्यमें यह नहीं बन सकता यह कहा नहीं जा सकता है । अत: सिध्द हुआ कि मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी पर्याप्तक भी होते हैं और अपर्याप्तक भी होते हैं।

शंका -- समुच्चयका ज्ञान करानेके लिये इस सूत्रमें च शब्दका कथन करना चाहिये?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, वह सामर्थ्यसे ही प्राप्त हो जाता है ।

अब नारकसंबन्धी शेष दो गुणस्थानोंके आधारके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं --

नारकी जीव सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्तक होते हैं ।। ८०।।

जिनकी छह पर्याप्तियां पूर्ण हो गई हैं ऐसे नारकी ही इन दो गुणस्थानोंके साथ परिणत होते हैं, अपर्याप्त अवस्थामें नहीं।

शंका -- नारकियोंकी अपर्याप्त अवस्थामें ये दो गुणस्थान क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, नारकियोंकि अपर्याप्त अवस्थामें इन दो गुणस्थानोंकी उत्पत्तिके निमित्तभूत परिणामोंका अभाव है, इसलिये उनकी अपर्याप्त अवस्थामें ये दो गुणस्थान नहीं होते हैं।

भावात्। सोऽपि किमिति तयोर्न स्यादिति चेत्स्वाभाव्यात्। नारकाणामग्निसम्बन्धादभस्मसाभ्दावमुपगतानां पुनर्भस्मनि समुत्पद्यमानानामपर्याप्ताध्दायां गुणव्दयस्य सत्त्वाविरोधान्नियमेन पर्याप्ता इति न घटत इति चेन्न, तेषां मरणाभावात् । भावे वा न ते तत्रोत्पद्यन्ते, ' णिरयादो णेरइया उव्वट्टिदसमाणा१ (मु. उवट्टिदसमाणा।)' णो णिरयगदिं जंति णो देवगदिं जंति, तिरिक्खगदिं मणुसगदिं न जंति २ (मु. ' जन्ति ' स्थाने सर्वत्र 'जादि ' इति।) इत्यनेनार्षेण निषिध्दत्वात् । आयुषोऽवसाने म्रियमाणानामेष नियमश्चेन्न, तेषामपमृत्योरसत्त्वात्। भस्मसाभ्दाव-मुपगतदेहांना तेषां कथं पुनरमरणमिति ३ (मु. पुनर्मरणमिति।) चेन्न देहविकारस्यायुर्विच्छित्त्यनिमित्तत्वात्। अन्यथा बालावस्थात: प्राप्तयौवनस्यापि मरणप्रसङ्गात्।

शंका -- इस प्रकारके परिणाम उन दो गुणस्थानोंमें क्यों नहीं होते हैं?

समाधान -- क्योंकि, ऐसा स्वभाव ही है ।

शंका -- अग्निके संबन्धसे भस्मीभावको प्राप्त हुए और फिर भी उसी भस्ममें उत्पन्न होनेवाले नारकियोंके अपर्याप्त कालमें इन दो गुणस्थानोंके होनेमें कोई विरोध नहीं आता है, अर्थात् छेदन भेदन आदिसे नष्ट हुए शरीरके पश्चात् पुन: उन्हीं अवयवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके सासादन और मिश्र गुणस्थान माननेंमें कोई विरोध नहीं आता है, इसलिये इन गुणस्थानोंमें नारकी नियमसे पर्याप्तक होते हैं, यह नियम नहीं बनता है ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, अग्नि आदि निमित्तोंसे नारकियोंका मरण नहीं होता है । यदि नारकियोंका मरण हो जावे, तो पुन: वे वहीं पर उत्पन्न नहीं होते हैं, क्योंकि 'जिनकी आयु पूर्ण हो गई है ऐसे नारकी जीव नरकगतिसे निकलकर पुन: नरकगतिको नहीं जाते हैं, देवगतिको नहीं जाते हैं । किंतु तिर्यंचगति और मनुष्यगतिको जाते हैं' इस आर्ष वचनके अनुसार नारकियोंका पुन: नरकगतिमें उत्पन्न होना निषिध्द है ।

शंका -- आयुके अन्तमें मरनेवाले नारकियोंके लिये ही यह सूत्रोक्त नियम लागू होना चाहिये?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, नारकी जीवोंके अपमृत्युका सद्भाव नहीं पाया जाता है । अर्थात् नारकियोंका आयुके अन्तमें ही मरण होता है, बीचमें नही।

शंका -- यदि उनकी अपमृत्यु नहीं होती है, तो जिनका शरीर भस्मीभावको प्राप्त हो गया है ऐसे नारकियोंका मरण नहीं होता यह कैसे बनेगा?

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, देहका विकार आयुकर्मके विनाशका निमित्त नहीं है। अन्यथा जिसने बाल-अवस्थाके पश्चात् यौवन-अवस्थाको प्राप्त कर लिया है ऐसे जीवके भी मरणका प्रसंग आ जायगा।

नारकाणामोघमभिधायादेशप्रतिपादनार्थमाह--

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ।। ८१।।

प्रथमायां पृथिव्यां ये नारकास्तेषां नारकाणां सामान्योक्तरुपेण भवन्ति, ततो२ (मु. कुतो?) विशेषाभावात् । यदि सामान्यप्ररुपणया प्रथमपृथिवीगतनारका एव निरुपिता भवेयुरलं तया, विशेषनिरुपणतयैव तदवगतेरिति ? न, द्रव्यार्थिकसत्त्वानुग्रहार्थ३ (मु. द्रव्यार्थिकनयात् सत्त्वा।) तत्प्रवृत्ते:। विशेषप्ररुपणमन्तरेण न सामान्यप्ररुपणतोऽर्थावगतिर्भवतीति तथा निरुपणमनर्थकमिति चेत्? न, बुध्दीनां वैचित्र्यात्। तथाविधबुध्दयो नेदानीमुपलभ्यन्त इति चेन्न, अस्यार्षस्य त्रिकालगोचरानन्तप्राण्यपेक्षया प्रवृत्तत्वात्।

शेषपृथिवीनारकाणां प्रतिपादनार्थमाह--

इस प्रकार सामान्यरुपसे नारकियोंका कथन करके अब विशेषरुपसे कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं--

इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें नारकी होते हैं ।। ८१ ।।

प्रथम पृथिवीमें जो नारकी रहते हैं उनकी पर्याप्तियां और अपर्याप्तियां नरकगतिके सामान्य कथनके अनुसार होती हैं, क्योंकि, नरकगतिसंबन्धी सामान्य कथनमें और प्रथम पृथिवीसंबन्धी कथनमें कोई विशेषता नहीं है।

शंका -- यदि सामान्यप्ररुपणाके व्दारा प्रथम पृथिवीसंबन्धी नारकी ही निरुपित किये गये हैं, तो सामान्यप्ररुपणाके कथन करनेसे रहने दो, क्योंकि, विशेषप्ररुपणासे ही उसका ज्ञान हो जायगा?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, सामान्य प्ररुपणाकी अपेक्षा रखनेवाले जीवोंके अनुग्रहके लिये सामान्यप्ररुपणाकी प्रवृत्ति होती है।

शंका -- विशेषप्ररुपणाके विना केवल सामान्यप्ररुपणासे अर्थका ज्ञान नहीं हो सकता है, ऐसी हालतमें सामान्यप्ररुपणाका कथन करना निष्फल है।

समाधान -- नहीं, क्योंकि, श्रोताओंकी बुध्दि अनेक प्रकारकी होती है, इसलिये विशेष प्ररुपणाके कथन केसमान सामान्यप्ररुपणाका कथन करना भी निष्फल नहीं है ।

शंका -- जो सामान्यसे पदार्थको समझ लेते हैं ऐसे बुध्दिमान् पुरुष इस कालमें तो नहीं पाये जाते हैं ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, यह आगम त्रिकालमें होनेवाले अनन्त प्राणियोंकी अपेक्षा प्रवृत्त हुआ है ।

शेष पृथिवियोंमे रहनेवाले नारकियोंके विशेष कथनके लिये आगेका सूत्र कहते हैं --

---

विदियादि १ (अ. ब. क. विदियाए) जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया मिच्छाइट्ठि-ट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ।। ८२ ।।

अधस्तनीषु षट्सु पृथिवीषु मिथ्यादृष्टिनामुत्पत्तेः सत्त्वात् । पृथिवीशब्दः प्रत्येकमभिसम्बन्धनीयः । सुगममन्यत् ।

शेषगुणस्थानानां तत्र क्व सत्त्वं क्व च न भवेदिति जातारेकस्य भव्यस्यारेका निरसनार्थमहा --

सासणसम्माइट्ठि--सम्मामिच्छाइट्ठि--असंजदसम्माइट्ठि णियमा पज्जत्ता ।। ८३ ।।

भवतु नाम सम्यग्मिथ्यादृष्टेस्तत्रानुत्पत्तिः, सम्यग्मिथ्यात्वपरिणामम-धिष्ठितस्य जीवस्य मरणाभावात्२ (मु. धिष्ठितस्य मरणा ।) भवति च तस्य मरणं गुणान्तरमुपादाय । न च तत्र स गुणोऽस्तीति । किन्त्वेतन्न युज्यते शेषगुणस्थानप्राणिनस्तत्र नोत्पद्यन्त इति ?

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवी पृथिवी तक रहनेवाले नारकी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ।। ८२ ।।

प्रथम पृथिवीको छोडकर शेष छह पृथिवियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंकी ही उत्पत्ति पाई जाती है, इसलिये यहां पर प्रथम गुणस्थानमें पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों अवस्थायें बतलाई गई हैं। सूत्रमें आया हुआ पृथिवी शब्द प्रत्येक नरकके साथ जोड लेना चाहिये । शेष व्याख्यान सुगम है।

उन पृथिवीयोंकी किस अवस्थामें शेष गुणस्थानोंका सद्भाव है और किस अवस्थामें नहीं, इस प्रकार जिसको शंका उत्पन्न हुई है उस भव्यकी शंकाके दूर करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं --

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक रहनेवाले नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्तक होते हैं ।। ८३ ।।

शंका -- सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवकी मरकर शेष छह पृथिवियोंमें उत्पत्ति मत होओ, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वरुप परिणामको प्राप्त हुए जीवका मरण नहीं होता। परन्तु उसका दूसरे गुणस्थानको प्राप्त होकर मरण होता है। परंतु मरणकालमें वह गुणस्थान नहीं होता, यह सब ठीक है। किंतु शेष (दूसरे, चौथे) गुणस्थानवाले जीव मरकर वहां पर उत्पन्न नहीं होते, यह कहना नहीं बनता?

समाधान -- ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए, कारण कि सासादन गुणस्थानवाला तो नरकमें उत्पन्न होता नहीं है, क्योंकि, सासादन गुणस्थानवाले के नरकायुका बन्ध नहीं होता।

नैवं वक्तव्यम्, कुत: ? न तावत्१ (मु. इति? न तावत्) सासादनस्तत्रोत्पद्यते, तस्य नरकायुषो बन्धाभावात् । नापि बध्दनरकायुष्क: सासादनं प्रतिपद्य नारकेषूत्पद्यते, तस्य तस्मिन् गुणे मरणाभावात्। नासंयतसम्यग्दृष्टयोऽपि तत्रोत्पद्यान्ते. तत्रोत्पत्तिनिमित्ताभावात्। न तावत्कर्मस्कन्धबहुत्वं तस्य तत्रोत्पत्ते: कारणम्, क्षपितकर्मांशानामपि जीवानां तत्रोत्पत्तिदर्शनात्। नापि कर्मस्कन्धाणुत्वं तत्रोत्पत्ते: कारणम्, गुणितकर्मांशानामपि तत्रोत्पत्तिदर्शनात्। नापि नरकगतिकर्मण: सत्त्वं तस्य तत्रोत्पत्ते: कारणम्, तत्सत्त्वं प्रत्यविशेषत: सकलपञ्चेन्द्रियाणामपि नरकप्राप्तिप्रसङ्गात् । नित्यनिगोदानामपि विद्यमानत्रसकर्मणां त्रसेषूत्पत्तिप्रसङ्गात्। नाशुभलेश्यानां सत्त्वं तत्रोत्पत्ते: कारणम्, मरणावस्थायामसंयतसम्यग्दृष्टे:

षट्पृथिवीषूत्पत्तिनिमित्ताशुभलेश्याभावात्२ (मु. षट्सु पृथिवीषू।) न नरकायुषः सत्त्वं तस्य तत्रोत्पत्तेः कारणम्, सम्यग्दर्शनासिना छिन्नषट्पृथिव्यायुष्कत्वात् । न च तच्छेदोऽसिध्दः, आर्षात्तत्सिध्द्युपलम्भात् । ततः स्थितमेतत् न सम्यग्दृष्टिः षट्सु पृथिवीषूत्पद्यते इति ।

जिसने पहले नरकायुका बन्ध कर लिया है ऐसा जीव भी सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर नारकियोंमे नहीं उत्पन्न होता है, क्योंकि, नरकायुका बन्ध करनेवाले जीवका सासादन गुणस्थानमें मरण नहीं होता। असंयतसम्यग्दृष्टि जीव भी मरकर व्दितीयादि पृथिवियोंमे उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि, सम्यग्दृष्टियोंके शेष छह पृथिवियोंमे उत्पन्न होनेके निमित्त नहीं पाये जाते। यदि कर्मस्कन्धोंकी अधिकता असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके शेष छह नरकोंमे उत्पत्तिका कारण कहा जावे, सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि, क्षपित कर्मांशिक जीवोंकी भी नरकमें उत्पत्ति देखी जाती है। कर्मस्कन्धोंकी अल्पता भी नरकमें उत्पत्तिका कारण नहीं है, क्योंकि गुणित कर्मांशिक जीवोंकी भी वहां पर उत्पत्ति देखी जाती है । नरकगतिका सत्त्व भी सम्यग्दृष्टिके नरकमें उत्पत्तिका कारण कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, नरकगतिके सत्त्वके प्रति कोई विशेषता न होनेसे सभी पंचेद्रिय जीवोंको नरकगतिकी प्राप्तिका प्रसंग आ जायेगा । तथा नित्यनिगोदिया जीवोंके भी त्रसकर्मकी सत्ता विद्यमान रहती है, इसलिये उनकी भी त्रसोंमें उत्पत्ति होने लगेगी । अशुभ लेश्याके सत्त्वको नरकमें उत्पत्तिका कारण कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, मरणके समय असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके नीचेकीं छह पृथिवियोंमें उत्पत्तिकी कारणरुप अशुभ लेश्याएं नहीं पाई जाती हैं। नरकायुका सत्त्व भी सम्यग्दृष्टिके नीचेकी छह पृथिवियोंमे उत्पत्तिका कारण नहीं है, क्योंकि, सम्यग्दर्शनरुपी खड्गसे नीचेकी छह पृथिवीसंबन्धी आयु काट दी जाती है । और नीचेकी छह पृथिवीसंबन्धी आयुका कटना असिध्द भी नहीं है, क्योंकि, आगमसे इसकी पुष्टि होती है । इसलिये यह सिध्द हुआ कि नीचेकी छह पृथिवियोंमे सम्यग्दृष्टि जीव मर कर उत्पन्न नहीं होता है ।

तिर्यग्गतौ गुणस्थानानां सत्त्वावस्थाप्रतिपादनार्थमाह --

तिरिक्खा मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे सिया पज्जत्ता, सिया अपज्जत्ता ।। ८४।।

भवतु नाम मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां तिर्यक्षु पर्याप्तापर्याप्तव्दयोः सत्त्वं, तयोस्तत्रोत्पत्त्यविरोधात् । सम्यग्दृष्टयस्तु पुनर्नोत्पद्यान्ते, तिर्यगपर्याप्तपर्यायेण सम्यग्दर्शनस्य विरोधादिति? न विरोधः, अस्यार्षस्याप्रामाण्यप्रसङ्गात् । क्षायिक-सम्यग्दृष्टिः सेविततीर्थकरः क्षपितसप्तप्रकृतिः कथं तिर्यक्षु दुःखभूयस्सूत्पद्यते इति चेन्न, तिरश्चां नारकेभ्यो दुःखाधिक्याभावात्। नारकेष्वपि सम्यग्दृष्टयो नोत्पत्स्यन्त इति चेन्न, तेषां तत्रोत्पत्तिप्रतिपादकार्षोपलम्भात्१ ((णेरइया) सम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण चेव णींति। जी. चू. सू. २६७.) l किमिति ते तत्रोत्पद्यन्त इति चेन्न, सम्यग्दर्शनोपादानात् प्राङः मिथ्यादृष्ट्यवस्थायां बध्दतिर्यङःनरकायुष्कत्वात् ।

अब तिर्यंचगतिमें गुणस्थानोंके सद्‌भाव के प्रतिपादन करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं

तिर्यंच मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ।। ८४ ।।

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंकी तिर्यंचोंसंबन्धी पर्याप्त और अपर्याप्त अवस्थामें भले ही सत्ता रही आवे, क्योंकि, इन दो गुणस्थानोंकी तिर्यंचसंबन्धी पर्याप्त और अपर्याप्त अवस्थामें उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं आता है। परंतु सम्यग्दृष्टि जीव तो तिर्यंचोंमें उत्पन्न नहीं होते हैं, क्योंकि, तिर्यंचोंकी अपर्याप्त पर्यायकेसाथ सम्यग्दर्शनका विरोध है?

समाधान -- विरोध नहीं है, फिर भी यदि विरोध माना जावे तो यह सूत्रवचन अप्रमाण हो जायगा ।

शंका -- जिसने तीर्थंकरकी सेवा की है और जिसने मोहनीयकी सात प्रकृतियोंका क्षय कर दिया है ऐसा क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव दुःखबहुल तिर्यंचोंमें कैसे उत्पन्न होता है ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, तिर्यंचोंकेनारकियोंसें अधिक दुःख नहीं पाये जाते हैं ।

शंका -- तो फिर नारकियोंमें भी सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होंगे ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, सम्यग्दृष्टियोंकी नारकियोंमे उत्पत्तिका प्रतिपादन करनेवाला आगम-प्रमाण पाया जाता है ।

शंका -- सम्यग्दृष्टि जीव नारकियोंमें क्यों उत्पन्न होते हैं?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, जिन्होंने सम्यग्दर्शनको ग्रहण करनेके पहले मिथ्यादृष्टि अवस्थामें तिर्यंचायु और नरकायुका बन्ध कर लिया है उनकी सम्यग्दर्शनके साथ वहां पर उत्पत्ति होनेमें कोई आपत्ति नहीं आती है।

सम्यग्दर्शनेन तत् किमिति न छिद्यते इति चेत् ? किमिति तन्न छिद्यते? अपि तु न तस्य निर्मूलच्छेद:। तदपि कुत: ? स्वाभाव्यात्।

तत्र सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यादिस्वरुपनिरुपणार्थमाह --

सम्मामिच्छाइट्ठि-संजदासंजद-ट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ।। ८५।।

मनुष्या: मिथ्यादृष्ट्यवस्थायां बध्दतिर्यगायुष: पश्चात्सम्यग्दर्शनेन सहात्ताप्रत्याख्याना: क्षपितसप्तप्रकृतयस्तिर्यक्षु किन्नोत्पद्यते इति चेत्? न, देवगतिव्यतिरिक्तगतित्रयसम्बध्दायुषोपलक्षितानामणुव्रतोपादानबुध्द्यनुत्पत्ते: । उक्तं च१ --(अ. प्रतौ 'उक्तं च' प्रभृति 'चत्तारि वि छेत्ताइं 'इत्यादिगाथा नास्ति ।)

चत्तारि वि छेत्ताइं आउग बंधेण२ (मु. बंधे वि ।) होइ सम्मत्तं
अणुवद-महव्वदाइं ण लहइ देवायुगं मोत्तुं३ (प्रा. पं. १, २०१। जी. ६५३. गो. क. ३३४९) ।। १६९।।

शंका -- सम्यग्दर्शनकी सामर्थ्यसे उस आयुका छेद क्यों नहीं हो जाता है?

समाधान -- उसका छेद क्यों नहीं होता है? अवश्य होता है, किंतु उसका समूल नाश नहीं होता है ।

शंका -- समूल नाश क्यों नहीं होता?

समाधान -- बांधे हुए आयुकर्मका समूल नाश नहीं होता है इस प्रकारका स्वभाव ही है ।

अब तिर्यंचोंमे सम्यग्मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंके स्वरुपका निरुपण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

तिर्यंच सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्तक होते हैं ।। ८५ ।।

शंका -- जिन्होंने मिथ्यादृष्टि अवस्थामें तिर्यंचायुका बन्ध करनेके पश्चात् सम्यग्दर्शनके साथ देशसंयमको ग्रहण कर लिया है और मोहकी सात प्रकृतियोंका क्षय कर दिया है ऐसे मनुष्य

तिर्यंचोंमें क्यो नहीं उत्पन्न हेाते? यदि होते हैं तो इससे तिर्यंच-अपर्याप्तोंमें देशसंयमके प्राप्त होनेकी आपत्ति आती है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, देवगतिको छोडकर शेष तीन गतिसंबन्धी आयुबन्धसे युक्त जीवोंकेअणुव्रतको ग्रहण करनेकी बुध्दि ही उत्पन्न नहीं होती है । कहा भी है --

चारों गतिसबन्धी आयुकर्मके बन्ध हो जाने पर भी सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो सकता

न तिर्यक्षूत्पन्ना अपि क्षायिकसम्यग्दृष्टयोऽणुव्रतान्याददते१ (मु. न्यादधते।), भोगभूमावुत्पन्नानां तदुपादानानुपपत्ते: । ये निर्दानास्ते कथं तत्रोत्पद्यन्त इति चेन्न, सम्यग्दर्शनस्य तत्रोत्पत्तिकारणस्य सत्त्वात् । न च पात्रदानेऽननुमोदिन: सम्यग्दृष्टयो भवन्ति, तत्र तदनुपपत्ते: ।

तिरश्चामोघमभिधायदेशस्वरुपनिरुपणार्थं वक्ष्यति ---

एवं पंचिंदिय-तिरिक्खा पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्ता ।। ८६ ।।

एतेषामोघप्ररुपणमेव भवेव्दिवक्षितं प्रति विशेषाभावात् ।

स्त्रीवेदविशिष्टतिरश्चां विशेषप्रतिपादनार्थमाह--

है, परंतु देवायुके बन्धको छोडकर शेष तीन आयुकर्मके बन्ध होने पर यह जीव अणुव्रत और महाव्रतको ग्रहण नहीं करता है ।। १६९ ।।

तिर्यंचोंमे उत्पन्न हुए भी क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव अणुव्रतोंको नहीं ग्रहण करते हैं, क्योंकि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव यदि तिर्यंचोंमें उत्पन्न होते हैं तो भोगभूमिमें ही उत्पन्न होते हैं और भोगभूमिमें उत्पन्न हुए जीवोंकेअणुव्रतोंका ग्रहण करना बन नहीं सकता है।

शंका -- जिन्होंने दान नहीं दिया है ऐसे जीव भोगभूमिमें कैसे उत्पन्न हो सकते हैं?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, भोगभूमिमें उत्पात्तिका कारण सम्यग्दर्शन है और वह जिनके पाया जाता है उनके वहां उत्पन्न होनेमें कोई विरोध नहीं आता है । तथा पात्रदानकी अनुमोदनासे रहित जीव सम्यग्दृष्टि हो नहीं सकते हैं, क्योंकि, उनमें पात्रदानकी अनुमोदनाका अभाव नहीं बन सकता है ।

विशेषार्थ -- क्षायिक सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति मनुष्य पर्यायमें ही होती है । अत: जिस मनुष्यने पहले तिर्यंचायुका बन्ध कर लिया है और अनन्तर उसके क्षायिक सम्यग्दर्शन उत्पन्न

हुआ है ऐसे जीवके उत्तम भोगभूमिमें उत्पत्तिका मुख्य कारण क्षायिक सम्यग्दर्शन ही जानना चाहिये, पात्रदान नहीं । फिर भी वह पात्रदानकी अनुमोदनासे रहित नहीं होता है ।

इसप्रकार तिर्यंचोंकी सामान्य प्ररुपणाका कथन करके अब उनके विशेष स्वरुपके निर्णय करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं --

तिर्यंचसंबन्धी सामान्यप्ररुपणाके समान पंचेन्द्रियतिर्यंच और पर्याप्तपंचेन्द्रियतिर्यंच भी होते हैं ।। ८६ ।।

पंचेन्द्रियतिर्यंच और पर्याप्त-पंचेन्द्रिय-तिर्यंचोंकी प्ररुपणा तिर्यंचसंबन्धी सामान्य-प्ररुपणाके समान ही होती है, क्योंकि, विवक्षित विषयके प्रति इन दोनोंके कथनमें कोई विशेषता नहीं है।

अब स्त्रीवेदयुक्त तिर्यंचोंमें विशेषका कथन करने के लिये आगेका सूत्र कहते हैं --

---

पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणिणीसु मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-ट्ठाणे सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ ।। ८७।।

सासादनो नारकेष्विव तिर्यक्ष्वपि मोत्पादीति १ (मु. नोत्पादीति।) चेन्न, व्दयो: साधर्म्याभावतो दृष्टान्तानुपपत्ते:।

तत्र शेषगुणानां स्वरुपमभिधातुमाह --

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजद-ट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ ।। ८८।।

कुत:? तत्रैतासामुत्पत्तेरभावात् । बध्दायुष्क: क्षायिकसम्यग्दृष्टिकर्नारकेषु नपुंसकवेद इवात्र स्त्रीवेद किन्नोत्पद्यत इति चेन्न, तत्र तस्यैवैकस्य सत्त्वात् । यत्र

पंचेन्द्रिय-तिर्यंच योनिनी जीव मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानमें पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ।। ८७ ।।

शंका -- सासादन गुणस्थानवाला जीव मरकर जिस प्रकार नारकियोंमें उत्पन्न नहीं होता है, उसी प्रकार तिर्यंचोंमें भी मत उत्पन्न होओ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, नारकी और तिर्यंचोंमें साधर्म्य नहीं पाया जाता है, इसलिये नारकियोंका दृष्टान्त तिर्यंचोंको लागू नहीं हो सकता है।

इनमें शेष गुणस्थानोंकेस्वरुपका कथन करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं --

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्तक होते हैं ।। ८८।।

शंका -- ऐसा क्यों होता है?

समाधान -- क्योंकि, पूर्वोक्त गुणस्थानोंमें मरकर ये उत्पन्न नहीं होते हैं ।

शंका -- जिस प्रकार बध्दायुष्क क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव नारकसंबधी नपुंसकवेदमें उत्पन्न होता है उसी प्रकार यहां पर स्त्रीवेदमें क्यों नहीं उत्पन्न होता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, नरकमें एक नपुंसकवेदका ही सद्भाव है । जिस किसी गतिमें उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दृष्टि जीव उस गतिसंबन्धी विशिष्ट वेदादिकमें ही उत्पन्न होता है यह अभिप्राय यहां पर ग्रहण करना चाहिये। इससे यह सिध्द हुआ कि सम्यग्दृष्टि जीव मरकर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें नहीं उत्पन्न होता है ।

क्वचन समुत्पद्यमानः सम्यग्दृष्टिस्तत्र विशिष्टवेदादिषु समुत्पद्यत इति गुह्यताम् । तिर्यगपर्याप्तेषु किन्न निरुपितमिति नाशङ्कनीयम्, तत्र प्रतिक्षाभावतो गतार्थत्वात् ।

मनुष्यगतिप्रतिपादनार्थमाह--

मणुस्सा मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे

सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ।। ८९ ।।

सुगममेतत् ।

तत्र शेषगुणस्थानसत्त्वावस्थाप्रतिपादनार्थमाह --

सम्माभिच्छाइट्ठि-संजदासंजद-संजदट्ठाणे णियमा पज्जत्ता ।। ९० ।।

भवतु सर्वेषामेतेषां पर्याप्तत्वम्, नाहारशरीरमुत्थापयतां प्रमत्तानामनिष्पन्नाहारगतषट्पर्याप्तीनाम् । न पर्याप्तकर्मोदयापेक्षया पर्याप्तोपदेशः, तदुदयसत्त्वा-

---

शंका -- तिर्यंच-अपर्याप्तोंमें गुणस्थानोंका निरुपण क्यों नहीं किया?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, अपर्याप्त तिर्यंचोंमें एक मिथ्यात्व गुणस्थानको छोडकर प्रतिपक्षरुप और कोई दूसरा गुणस्थान नहीं पाया जाता है, अत: विना कथन किये ही इसका ज्ञान हो जाता है।

विशेषार्थ -- यहां अपर्याप्त तिर्यंचोंसे लब्ध्यपर्याप्त तिर्यंचोंका ग्रहण करना चाहिये । और लब्ध्यपर्याप्तकोंके एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है । अत: उनके विषयमें यहां पर अधिक नहीं कहा गया है ।

अब मनुष्यगतिके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं --

मुनष्य मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानोंमें पर्याप्त भी होते हैं, ओर अपर्याप्त भी होते हैं ।। ८९ ।।

इस सूत्रका अर्थ सरल है ।

मनुष्योंमें शेष गुणस्थानोंके सद्भावरुप अवस्थाके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि, संयतासंयत और संयत गुणस्थानोंमें नियमसे पर्याप्तक होते हैं ।। ९० ।।

शंका --- सूत्रमें बताये गये इन सभी गुणस्थानवालोंको पर्याप्तपना प्राप्त होओ, परंतु जिनकी आहारक शरीरसंबन्धी छह पर्याप्तियां पूर्ण नहीं हुई हैं ऐसे आहारक शरीरको उत्पन्न करनेवाले प्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीवोंके पर्याप्तपना नहीं बन सकता है । यदि पर्याप्त नामकर्मके उदयकी अपेक्षा आहारक शरीरको उत्पन्न करनेवाले प्रमत्तसंयतोंको पर्याप्तक कहा जावे, सो

विशेषतोऽसंयतसम्यग्दृष्टीनामपि अपर्याप्तत्वस्याभावापत्ते: । न च संयमोत्पत्त्यवस्थापेक्षया तदवस्थायां प्रमत्तस्य पर्याप्तत्वं घटते, असंयतसम्यग्दृष्टावपि तत्प्रसङ्गादिती? नैष दोष:, अवलम्बितद्रव्यार्थिकनयत्वात् । सोऽन्यत्र किमिति नावलम्ब्यत इति चेन्न, तत्र निमित्ताभावात् । किमर्थमत्रावलम्ब्यत इति चेत्पर्याप्तैरस्य साम्यदर्शनं तदवलम्बनकारणम् । केन साम्यमिति चेद्? दु:खाभावेन । उपपातगर्भसम्मूर्च्छज-शरीराण्याददानानामिव१ (मु. ण्यादधानानामिव) आहारशरीरमाददानानां न दु:खमस्तीति पर्याप्तत्वं प्रमत्तस्योपचर्यत इति यावत् ।

पूर्वाभ्यस्तवस्तुविस्मरणमन्तरेण शरीरोपादानाव्दा दु:खमन्तरेण पूर्वशरीरपरित्यागाव्दा प्रमत्तस्तदवस्थायां पर्याप्त इत्युपचर्यते ।

भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, पर्याप्तकर्मका उदय प्रमत्तसंयतोंके समान असंयत सम्यग्दृष्टियोंके भी निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्थामें पाया जाता है, इसलिये वहां पर भी अपर्याप्तपनेका अभाव मानना पडेगा । संयमकी उत्पत्तिरुप अवस्थाकी अपेक्षा प्रमत्तसंयतके आहारककी अपर्याप्त अवस्थामें पर्याप्तपना बन जाता है यदिं ऐसा कहा जावे सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि, इस प्रकार असंयत सम्यग्दृष्टियोंके भी अपर्याप्त अवस्थामें (सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा) पर्याप्तपनेका प्रसंग आ जायगा ?

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, द्रव्यार्थिक नयके अवलम्बनकी अपेक्षा प्रमत्तसंयतोंको आहारक शरीरसंबन्धी छह पर्याप्तयोंके पूर्ण नहीं होने पर भी पर्याप्त कहा है ।

शंका -- उस द्रव्यार्थिक नयका दूसरी जगह (विग्रहगतिसंबधी गुणस्थानोंमें) आलम्बन क्यों नहीं लिया जाता है ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, वहां पर द्रव्यार्थिक नयके अवलम्बनके निमित्त नहीं पाये जाते हैं ।

शंका -- तो फिर यहां पर द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन किस लिये लिया जा रहा है ।

समाधान -- आहारकसंबन्धी अपर्याप्त अवस्थाको प्राप्त हुए प्रमत्तसंयतकी पर्याप्तकोंके साथ समानताका दिखाना ही यहां पर द्रव्यार्थिक नयके अवलम्बनका कारण है ।

शंका -- इसकी दूसरे पर्याप्तकोंके साथ किस बातसे समानता है ?

समाधान -- दु:खाभावकी अपेक्षा इसकी दूसरे पर्याप्तकोंके साथ समानता है? जिसप्रकार उपपातजन्म, गर्भजन्म या संमूर्छनजन्मसे उत्पन्न हुए शरीरोंको धारण करनेवालोंके दु:ख होता है, उस प्रकार आहारशरीरको धारण करनेवालोंके दु:ख नहीं होता है, इसलिये उस अवस्थामें प्रमत्तसंयत पर्याप्त है इस प्रकारका उपचार किया जाता है। अथवा, पहले अभ्यास की हुई वस्तुके विस्मरणे विना ही आहारक शरीरका ग्रहण होता है, या दु:खके विना ही पूर्व शरीर (औदारिक) का परित्याग होता है, अतएव प्रमत्तसंयत अपर्याप्त: